

सुविचार
 समाज में दूसरों को परेशानी में डालने वाले लोग सुदूर पूर्व के लोगों और दूसरों को दूर खी उठने देखने वाले लोगों और दुर्गम जगहों की भी नहीं है। इस्लामि दानों हमेशा साधना रहिए। इनकी मीठी मीठी बातों में ही जहर छुपा होता है। ऐसे ईश्वरवादी लोग अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए दूसरों के घरों में आना लगाने का काम भी करते हैं। ऐसे में नुबरा प्रसादविहार, सुधी, शांति विल और सफर होनी ही नुबरा दुम्भरों के लिए सबसे बड़ी शिष्टाचार है। ईश्वरवादी लोगों ने कभी भी हमें मत मानिये और हमसे तत्काल संबंध विच्छेद कर लीजिए।

डॉ. मदनलाल गंगाले
 जावर जिला रतलम

भाषणजीवी
 'जैसा कि कुछ बुद्धिजीवी यानी भाषणजीवी करते हैं। भाषण देने के लिए बुद्धिने वल्लो से खड़ा जहाज का क्रिया बसूल करते हैं और ट्रेन से स्मरण करते हैं। क्रिया ट्रेसी की का बसूल करते हैं और स्मरण बस से करते हैं। मने भी यही क्रिया में बुद्धि की सहायता पर भाषण देकर बस से लौट रहा था। बस में कुछ भीड़ थी। मेरे उठते अगले की दोनों सीटों पर दो मुस्टेड कैप थे। बदन का पसीना उनके कमीजों से बाहर आ रहा था। दांत पीले बस चुके थे। उन्हें बस करने का शक़र भी नहीं था। अमर से धीरे-धीरे बाह कर चले। बसवाजी कर रहे थे, हंस रहे थे। जकर उनकी भाषा अस्वभाविक होगी। ऐसे लोग ही समाज को खराब करते हैं। अनपढ़... जाहिल... कदां के। मेरी सोंप मेरे दगा दिया गये भाषण पर हल्की हो रही थी। समाज में बुद्धि की दगा पर कोई ध्यान नहीं देता है। बरिष्ठ नगरिक या मॉडिऑन वॉली सीटों पर पुरुष कब्जा कर लेते हैं। कंडक्टर की उन्हें कुछ नहीं करता है। कोन झगड़ मोल ले। मुझे ऐसे लोगों पर मुसम आ रहा था। अचानक देखा, बस में एक बूढ़ा और युवा लड़की चढ़ीं हैं। उन्होंने महिला सीटों पर कबिज पुरुषों से सीट देने के लिए आग्रह किया पर वे उस से मय नहीं हुए। वे दोनों निगरा में खड़े रही। उन्होंने मेरी तरफ देखा शुरू किया। मैं समझ गया कि मुझे सुदर्शन नहीं मान रहे हैं। उनकी निगाह मेरी सीट पर है। मने आँखें बंद कर लीं। मेरे अगले बैठे दोनों बुद्धिजीव जिनका नाम से बेकबर एक दूसरे से बरिगार रहे थे। हंस रहे थे। अचानक उनमें से एक बोला - अरे देख, वह बुद्धिवा और उसकी छेसरी खड़े हैं। उनके दगा बुद्ध को बुद्धिवा और लड़की को छेसरी काना मुझे बिल्लवु नहीं लगता। ऐसा तो बेकरी है, अनपढ़... जाहिल... देवती जो टूटी। वे दोनों एक साथ खड़े हो गए उनमें से एक बोला -अम्मा तु यहाँ मेरी सीट पर बैठ जा दूसरा बोलका - पर छोड़े तु यहाँ मेरी सीट पर बैठ जा। कैसे बदनजि है। उन्हें बोलना भी नहीं आता। पर बुद्ध और उसके साथ की लड़की नहीं सीटों पर बैठ चुकी थी। बुद्ध ने आशीर्वादी की झुड़ी लगा दी थी। वह दोनों अब खड़े-खड़े मस्ती कर रहे थे और मैं कुछ पिटा हुआ मद्रस कर रहा था।

गोविंद शर्मा
ऐसे खत्म होगा, देहज
 नेतलाल: अरे, भाई कैसे है, क्या हाजचाल है।
 अमन: ठीक-ठीक भाई, धन्यवाद।
 नेतलाल: तब बर आने बेटे की शादी कर रहे है कि नहीं।
 अमन: जी कर रहा हूँ।
 नेतलाल: पिछले बार तो उसकी शादी के बारे में आप सोच रहे थे तो कर रहे थे कुछ देज भेज लेंगे।
 अमन: जी सोच रहा था क्योंकि उस समय वह बेरोजगार था।
 नेतलाल: इस बार देज ले रहे है कि नहीं।
 अमन: इस बार देज नहीं लूँगा। बिना देज की शादी कलगा अपने बेटे की।
 नेतलाल: क्यों भाई?
 अमन: कन्याई। इस बार मेरे बेटे को ससुराकी नैकी हो गई है।
 नेतलाल: कहाँ तक तो बहुत ही अच्छे बात है, आप देज लिए बिना शादी कर रहे है पूरे समाज को प्रैरित कर रहे है।
 अमन: जी, यह तो सीना ही चाहिए। नमन भेज देज बेरोजगार था उस समय में देज इस्लाम लेना चाह रहा था तबिह वह कोई निजमस कर सकें। अभी मेरा बेटा सरकारी नैकी में आ गया है उसकी लगभग 90000 - वेतन मिलेगी तो फिर मैं देज क्यों लूँगा।
 नेतलाल: यह फैसला समाज के लिए प्रेरणादाई है, भाई।

रंजना 'अमन'
संरकमी सह कवि
 निरिहड झारखण्ड

पीले हाथ
 लघुकथा



हाथ पीले कर लिंगांगी विद्य हो रही थी। हललीन लीपते-लीपते वह अचानक मुझे और सुधाकर के गले लग गई।
 भीगी पलकों की कोर पीछे छोड़ कर बोली
 'पापु जी, आप बेरक सब कुछ छोटे को दे दीं। बस मेरा कराम, मेरा रहने देना। मैं नहीं चाहती हूँ हर बार पानक आकर बुआ की तरह पूछें।
 भैया, मैं कहीं सोऊँ?
 यह स्टूडेंट्स कहीं रहूँ?'
 बिलबले सुधाकर ने उसे दोनों हाथों से थाम लिया, जैसे बिखरती आंखों को समेट रहा हो। सुधाकर की आवाज में विरसास था और हाथों में आसमान सी छा...
 'नहीं देती, ऐसा कभी मत सोचना।
 यह पर तग था और तेरा ही रहेगा।'
 सुदूर से बिना हठे सम्य दानों की आँखों से मोटे पाने का दरिया चुपचाप बह निकला।
विजय सिंह चौहान

गुड़ की चाय

वे एक-दूसरे को बरसों से जानते थे, पर आकर्षण की कोषल कब मम में उम आई, इसका हिसाब दोनों के पास नहीं था। पचास पर का प्रेम किसी उखल या आवेग का नाम नहीं होता। संसार की भीड़ से गुजरकर जहाँ सुदूर की छॉर मिल जाए, वहीं उठर जाने का मन करता है। यहाँ न सूरत सवाल करती है, न सौत करकीती मीठती है। दो शब्द अनपत्न के मिल जाँए, मुने मन को कोई इमारत पड़ ले, वही पराजित लगता है। कब सुमन की गाड़ी चुप अंधेरे में किसी अजनबी राह पर बड़ जाती और कब विवेक बिना कुछ कहे पास की सीट पर बैठ जाता, पता ही नहीं चलता।
 'बच्चे कैसे है?'
 विवेक ने सहज पूछा।
 'सौपर अमेरिका पहुँच गया...'
 और सुधि मुबई, 'कहते हूए सुमन ने पलकों में उठर जाने की समेट लिया। 'सुबह सात बजे की फलाइट थी... अब तक आभी दूरी तय भी कर ली होगी।' हरी बली का इशारा मिलते ही कार की मोतापनी ही स्स कुछ कर जाती। देसी लुकी चाय के इस सारने ने कई अडकती सॉतें बह दीं। दोनों समझ भी रहे थे और अजनबी भी बने हुए थे। 'अच्छ लगता है तुमसे साथ वक्तू विताना,' विवेक ने धीरे से कहा। सुमन मुस्कुराई। बह बातों का और कार का गिरर बदलती रही। जब भी बात आगे बढ़ने लगती, कभी वह रास्ता मोड़ देती, तो कभी हॉन बजाकर खुद को ही आगाह कर देती। रास्ते में लगा जाम, और कार के बंद शीशे।
 क्या अंजाम होगा आखिर इस सुदूर के अंत का, सुमन ने मन की परत खोली। न तुम आगे बड़ सकते और न मैं। अपना अपना जहाँ है, पर और सुधी संसार है। क्या मत भाना प्रेम है या सुदूर की गहरी छव डेम है। ऐसे प्रेम उखला कि दोनों निराबद थे। वैसे भी वे सभी चिंतन, मधन और शोध का विषय हो सकते हैं। जाम खुलते ही रास्ता साफ हुआ। कई स्पॉड बेकर, लाल, पीली और हर बरी से गुजरते हुए सुमन की कार मॉल से सटी एक अधिभारी गली में आकर टिठक गई।
 हैडनाइट की रोशनी में रस्ता तो साफ नजर आ रहा था मगर हबब में वीते अनगिनत परन का उतर दोनों को नहीं सूझ रहा था। कार के भीतर अंधेरे में बैठे विवेक और सुमन, सुदूर की उस खोज को मय रहे थे। कार का इंजन चालू था। पर दोनों उठर हुए थे। किन्तु, परतु और संशय के बीच।
विजय सिंह चौहान

वसंत के नए ठिकाने

शहर की संस्था जब चुन - चुन कर तामा समाजसेवियों, सरस्वती पुर्ण, युवा हृद्य समारोह और गर्भों के मसीहओं को सम्मानित कर चुकी तब उसे सम्मानित होने वाला क अभाष मद्रसुस हुआ। संस्था की आपात बैठक बुला कर इस मसले पर विचार किया गया कि अज किये सम्मानित करें, सभी निपट हुए हैं। गहन मगन मधन के दौरान मेबर के दिमाग की बती जली बह बोला, 'दो दिन बाद वसंत आने वाला है उसे ही सम्मानित कर दो। खुश हो जाएगा।' सब ने इस प्रस्ताव पर समझति व्यक्त कर दी। वसंत को सुचित करने के लिए एक शिप्ट मंडल वसंत के सभी सभाविगत ठिकाने पर गया। वगैरह, बगीचे, फूल, कलियाँ, धंर ' की गुंजन, नदियों के किनारे, सुंदरियों की केश राशिर, इतने बहती हुई मंद पवन सब दूर वसंत को खोज नाना बंदा नहीं मिला तो नहीं मिला। अंधार संस्था परेशान बयौकि अति आत्म विरसास में प्रेस नै भी अखबारों में दे मारे थे कि संस्था इस साल सल्लिय वृत्त पूण वसंत का सम्मान करने जा रही है। अब वसंत दगा के ठिकाने नहीं पता नहीं कहां लेले लेने चले गए।

संस्था सचिव को कुछ विरसासनीय सूची में बयान कि वसंत को अतिरिक्त ठिकानों में उसके पारंपरिक टिकाओं से खंडू दिया है। अस्पिरक अत्र उन अत्रर कही तत्सर्वे हतौफरकन वसंत है।
 उसे लाफना और अपनी व्यथ कथा सुनाई और कहा, 'भाई, हमारी मदद करो या, इस बार वसंत ने हमें मरवा दिया। हमारी संस्था को इज्जत का भाजी पाला होने का है।'
 यही पब्या निपटया है। अजकलावत पारंपरिक ठिकाने पर नहीं मिलता है। वहाँ से तो वह हड़का दिया गया है। अभी बापड़ बेपर भटक रहा है। कभी ऐसी वैसी जगह ही मिल जाएगा।', लिहना संस्था के सारे मेबर वसंत को तामाप वैसे वैसी जगहें मालव सड़क के गड्डे, कचरा पेटिओ, रेड लाइट एरिया, ट्रेनिंग ग्राउंडों में खूँले रोहसों दौरान एक सदस्य की निगाह सीवरज लाइन पर गई बह जोर से मारे सुखी के चिल्लाया, 'अरे, बह रहे अरुगुण वसंत। सीवरज लाइन में पसं हूए राग वसंत बहरा गा रहे हैं।' वसंत कहीं भागे उसके पल्ले सवने लो हृद्य वसंत को लाफक लिया और आयोजन स्थल पर लाकर एक कमरे में किसी विधाक की तरह बंद कर दिया। तामाप को नहला कर इत्र फुलेल लगा कर कुसी पर बैव दिया। संस्था अथख से किसी ने पछ, 'कहाँ मिले वसंत आपकों?' अथख ने कान के पास मुह ले जाकर फुसफुसाते हुए कहा, 'अपने नए गोपीनीय ठिकाने पर मिले राग वसंत बहरा गाते हूए।'
रंजना शर्मा, स्वतंत्रलेखक एवं पत्रकार 42, बहादुरगंज, उज्जैन, मध्य प्रदेश

गिरगिट
 हब सिटी सेंटर से मेग्रे सुक हूवी तो बरुंड बलास मेग्रे में सीट पाने के लिए लुगे हई बलास प्राणियों के हंड इपट्टे। हलाकि मेग्रे में प्रत्येक यात्री के बैठ जाने के लिए पर्याप्त जगह थी, फिर भी दरवाजे के पास वाली एक कोने की सीट पाने की हंड में दो व्यक्तिन (जो कारपें के हिसाब से कानो सभापत थे) एक दूसरे के ऊपर गर पड़े। अघ भर में पगजीले सपड़ों के नीचे ब जानवर अपनी औकत पर आ गय। कुछ बहल ही मरु प्रत. काल अस्मरणीय शब्दों का अदान प्रदान हुआ। फिर मरे और कुछ और यात्रीयों के बीच बचाव के बंद उन दोनों ने मेरी दोनों और अपना स्थान ग्रहण किया / कुछ देर के बाद मेरे बयौ और बैसे व्यक्तिन ने (जो अधिक् हिसाब हो उत था) ने अपना बड़ा सा मोबाइल खोला और उसकी खोज पर उभर आये रीतिन अघरों को बड़े भक्ति भाव से पढ़ने लगा। मैं कनशिये से देखा : गीता सर था तुम क्या लेकर आये थे / क्या लेकर जाओगे वरिह वरिह ! मैंने ध्यान से देखा, लोहे की मजबूत टाकई मेग्रे बालों की ही थी / और जतनी ही मजबूती से डिब्बे के साथ जुड़ी हूवी थी ... मुझे कुछ कुछ गीता के उदरीय की सान्कता सभाष आने लगी थी ! ! ! !
 (रवि श्रुति, दिल्ली)

पात्र -सुपात्र
 एक भाने एक दंपति के घर पधरी। भाने ने उनकी सेवामोदी की लजभ भाने चलते सगे, दो दोनों पति-पत्नने उन्हें विहाई देने लगे पनी भावावेरा में बोल पड़े, 'भाने जी ! मेरे इस आदमी को कुछ समझाएँ। मैं कन-कन कर रहा हूँ, पर यह है कि दरबानी खड़ेगा ही नहीं। मैं तो तंग आ गयी हूँ इससे। भाने अपनी जोली में हाथ डलते हुए स्त्री की सफा पति तैश में बोल पड़े, 'मेरी बीवी को घू- घूर कर क्या देख रहा भाने ! कल अपना रास्ता नान । ' भाने बिना कुछ कहे यंत्रवत् चल पड़े। उन्हें जाते हुए देख कर स्त्री समझ पधी, भाने जोली में हाथ डाल कर कुछ देना चाहती थे, पर उसके पास उस वक्त कोई धात्र न था।
 -निर्मल नारा लखीमपुर -खीरी उ. प्र.

खिड़की के उस पार

नहीं बची थी कि बाहर तक जा सकें।
 चुके को गुंजे सतल सात हो पड़ते थे,
 बेटा-बेटी शहरी और देशों में बसा गए थे।
 अन्नी जीवन का संसार उन्नी खिड़की तक सिमट गया था।
 'नीचे, उसी बरगद के पास हर शाम एक लड़का गुम्बारे बचेन आता था।
 लाल, पीले, नीले गुम्बारे- जैसे किसी ने आसमान के टुकड़े टुकड़े डेरियों में बाँध दिए हों।
 शराब देवी उसे रोव देखती।
 कभी-कभी लगता- वो लड़का नहीं,
 उनका बीता हुआ बचपन

सड़क पर घूम रहा है।
 एक दिन बाहिर से शहर को धाम मिला।
 सड़का भीगत हुआ बरगद के नीचे टुकड़ गया।
 उन्हेने खिड़की खोलकर आवाज दी-
 'अरे बेटे, ऊपर आ जा... भोग जाएगा।'
 लड़का सकुचाया।
 'नहीं अम्मा, मासिक डेडिंग।'
 'डॉट मेरी हेली, मैं सड़कें पर दस्तक हूँ- सामने रंजना खड़ा था- साफ कपड़े, कंधे पर पैना।
 'अम्मा, वो बोलता, 'मुझे स्कूल में दाखिला मिल गया है।
 अब गुम्बारे नहीं बनेगा।'
 शारदा देवी की आँखें भर आईं।
 उन्हेने बस डाना कन- 'खिड़की बंद मत करना, सड़कें खोल दे।'
 बरगद अब भी खड़ा है।
 गुम्बारे नहीं आते।
 पर खिड़की के उस पार अब एक भविष्य झँकता है।
मुकेश कुमार विरसा, जैसलमेर

'भूख'
 लघुकथा

'पुनिया टिटुले हुए ठंड में अपने पाँच बच्चों के साथ निकल पड़ी, 'खाने की तलाश में 'बयौकि आज पर में अन्न का एक टुकड़ा भी नहीं था छोटी मुन्नी ने रोते हुए कहा 'मैं कुछ खाने को दी ना, बहुत भूख लगी है।' 'पेट की आर के सामने उठ भी कम लात रही थी शरीर पर गुन कपड़े तो थे नहीं, केवल की गहरी छव डेम है। ऐसे प्रेम आगे बड़ और भवान से प्रार्थना करने लगी, 'कि भवान हमारी मदद करीए... उसी समय एक व्यक्त खाना लेकर आया।' बच्चों ने कहा 'न ! अंकल खाना लेकर आए हैं। मुन्नी ने कहा ... 'अंकल फीते मुझे खींजए, बहुत भूख लगी है।' अंकल ने केवल दो रोटी और सबजी दी। उसी समय वहाँ से एक अम्मा अपने दो बच्चों को लेकर जा रही थी। 'बच्चे बहुत रो रहे थे। पुनिया ने पूछ ... 'अम्मा बच्चे क्यों रो रहे हैं?' अम्मा ने कहा... 'बेटा बच्चे भूख से रो रहे हैं।' पुनिया ने अपने बच्चों के हाथ से रोटी लेकर अम्मा के बच्चों को दे दिया। बच्चे नाराज भी हुए, पर पुनिया खुश थी, कि शायद भवान की यही इच्छा थी।
श्रीमती शोभा रानी तिवारी,
 619 अक्षत अपार्टमेंट खातीवाला टैंक इन्दौर

लघुकथा
कालचक्र
 प्रणय प्रभात

ये ही होना था

लघु रसमी से बंध जमीन पर पड़ा था। उसकी मोटी-मोटी सुंदर ली आँखों में अतुपु थे। मर्म ची बटे वाली आवाज में कातरता, पूरा बदन काँसा लगा। बेकाबू लीठी भड़कन और रट रट कर बोलते वदनाक अंत का प्रतीक। अंत भी स्वाभाविक मोत नहीं, कले के रूप में। नृसतलरुण और पहालिक। सा पुटे हुए कठ से निकलने वाले आर्ननत को सुनने वाला कोई नहीं। फल-पल करेव आता मीत की आट और बेकस सा जिमस। जिमस भी अख खारता, कन-कन की मुताबिक। कंधा न सीता तो पास न फटकने देता किसी को। कुछ ही दूरी पर उसका अपना बेटा अतुपु उकड़ू बैठा था। एक धिक्ने से गीले पावर के पास, प्लास्टिक के डब्बे में पानी लिए। एक पल में फंके बड़े से छुटे को धार देता हुआ। पास ही खड़ा था उसका पोता, मलतल अतुपु का कर्मिसन बेटा इपु। अपने बाप के हार को देखने में सौधने के लिए। उन्नी-उन्नी ची ब मोटी दीवारों के बीच एक कच्चे चौबान से चल रहा था। यह सब कुछा शरीर आबदी से कुछ दूर बीचने में था जब जीव ही मिटने में पट्ट पड़ना या लहू का एक पक्का पुराण। खूब हो जाना था अतुपु न रखा के लिए लिए बेहेशा छपटने का नकम सा प्रयास। जीवन लीला के साथ ही। भयाक्रांत लघु के जलन में तेर रहे थे कुछ भयाक्र मंकर। उसे लगातार यह आ रहा था बेटे के गदन में दृष्टा मलतल। उसे डोली उभर से निरी और बेजुगन जीवों की गदन कट कर दिखाना। खाल जगार कर बोटी-बोटी अलग करने का तरीका सिखाया। जवान होने से पहले एक कामयाब अल्टरन बना डिकना। कल का हार देना, बिना किसी रदम के। वो भी पूरी वेददी व निर्मलता के साथ। डिक कैसे ही, जैसे आज वो अपने बेटे को सिखा रहा था। बेटा यति अलमस अपना पोता इपु। जिसके लिए वो न जाने क्या-क्या करने में कुछ रहा उत था। उसे क्या पता था कि एक दिन उसका अपना बचपु ही उसका खून बहने पर आगाव हो जाएगा। अजबनाई आँखों में तग हो चुके हार का उर साफ झलक रहा था। आज बहते लाइला पोता उसकी हलत से बेकबर था। तैयार जो था अपने बाप का साथ देने के लिए। एक और नरु कलन में छुटे की धार को उंगली से परखते हुए उत खड़ा था अतुपु। बड़ रहा था उसकी अर्पनी ओर। कंड में चुट रही थी लघु की थरईं हूँ जो चीकरा जो चाह कर भी समझा नहीं पा रहा था उस जलिन को अपना रिखा। जो चीब-चीब कर कर चुका था वो अतुपुनो हो चुका था। आखिर अतुपु कैसे समझता उसकी पीठ? वो समझता उसकी बुना? लघु के बचने में उन्हे विहाई देने लगे पनी भावावेरा में बोल पड़े, 'भाने जी ! मेरे इस आदमी को कुछ समझाएँ। मैं कन-कन कर रहा हूँ, पर यह है कि दरबानी खड़ेगा ही नहीं। मैं तो तंग आ गयी हूँ इससे। भाने अपनी जोली में हाथ डलते हुए स्त्री की सफा पति तैश में बोल पड़े, 'मेरी बीवी को घू- घूर कर क्या देख रहा भाने ! कल अपना रास्ता नान । ' भाने बिना कुछ कहे यंत्रवत् चल पड़े। उन्हें जाते हुए देख कर स्त्री समझ पधी, भाने जोली में हाथ डाल कर कुछ देना चाहती थे, पर उसके पास उस वक्त कोई धात्र न था।
 -निर्मल नारा लखीमपुर -खीरी उ. प्र.